International Journal of Interdisciplinary Innovative Research & Development (IJIIRD)
ISSN: 2456-236X
Vol. 10 Issue 01 | 2025

भारत में नवउदारवादी आर्थिक नीतियाँ और धार्मिक पहचान का पुनर्गठनः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सुभाष (शोधार्थी), डॉ. योगेश सिंह (शोध निदेशक)
विभाग – समाजशास्त्र विभाग, श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबरेवाला विश्वविद्यालय, विद्यानगरी, झुंझुनूं

DOI:10.5281/zenodo.18102640

सारांश

भारत में 1991 के बाद लागू की गई नवउदारवादी आर्थिक नीतियों ने न केवल देश की आर्थिक संरचना को परिवर्तित किया, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन पर भी गहरे प्रभाव डाले। नवउदारवाद ने राज्य की भूमिका को सीमित करते हुए बाजार को केंद्र में स्थापित किया, जिसके परिणामस्वरूप संसाधनों के वितरण, अवसरों की उपलब्धता और सामाजिक सुरक्षा के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले। इस प्रक्रिया ने भारतीय समाज में पहले से विद्यमान सामाजिक असमानताओं को और अधिक जटिल तथा गहरा बना दिया।

इसी परिवर्तित सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य में धार्मिक पहचान का उभार एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रवृत्ति के रूप में सामने आया। नवउदारवादी व्यवस्था के अंतर्गत बढ़ती आर्थिक असुरक्षा, बेरोजगारी, वर्गीय असमानता और सामाजिक हाशियाकरण ने पहचान आधारित राजनीति को नई ऊर्जा प्रदान की। धार्मिक पहचान न केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी, बल्कि सामाजिक असमानता को वैध ठहराने और पुनरुत्पादित करने का एक प्रभावी उपकरण भी बन गई। परिणामस्वरूप, समाज में धार्मिक आधार पर विभाजन, बहिष्करण और असमानता की प्रक्रियाएँ अधिक स्पष्ट रूप से उभरने लगीं।

यह शोध पत्र नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के अंतर्संबंध का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार नवउदारवादी नीतियाँ सामाजिक संरचना को प्रभावित करती हैं और धार्मिक पहचान के माध्यम से असमानताओं को पुनर्गठित करती हैं। यह शोध वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें द्वितीयक स्रोतों जैसे पुस्तकों, शोध लेखों और सामाजिक अध्ययनों का उपयोग किया गया है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नवउदारवाद और धार्मिक पहचान के बीच एक जटिल अंतर्संबंध मौजूद है, जो भारतीय समाज में सामाजिक असमानता को न केवल बनाए रखता है, बल्कि उसे नए रूपों में प्रस्तुत भी करता है। यह शोध सामाजिक परिवर्तन की इन प्रक्रियाओं को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

प्रमुख शब्द–नवउदारवाद, धार्मिक पहचान, सामाजिक असमानता, सामाजिक परिवर्तन

1. प्रस्तावना

भारत में नवउदारवादी आर्थिक नीतियों की शुरुआत वर्ष 1991 के पश्चात् एक ऐतिहासिक मोड़ के रूप में देखी जाती है। आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक बाजार से जोड़ने का कार्य किया, परंतु इसके सामाजिक परिणाम उतने सरल और सकारात्मक नहीं रहे, जितने प्रारंभिक रूप से प्रस्तुत किए गए थे। नवउदारवाद ने राज्य की भूमिका को कल्याणकारी संस्था से हटाकर एक नियामक मात्र तक सीमित कर दिया, जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में बाजार का प्रभाव बढ़ता चला गया। इस परिवर्तन ने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच असमानता को और अधिक स्पष्ट तथा गहन बना दिया।

नवउदारवाद केवल आर्थिक नीतियों का समूह नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी सामाजिक–राजनीतिक विचारधारा है जो प्रतिस्पर्धा, उपभोक्तावाद और व्यक्तिगत सफलता को केंद्र में रखती है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक संबंधों में सामूहिकता का स्थान धीरे–धीरे व्यक्तिवाद ने ले लिया। जब राज्य सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने में पीछे हटता है, तब समाज के कमजोर वर्गों में असुरक्षा, हताशा और पहचान–संकट की भावना उत्पन्न होती है। इसी संदर्भ में धार्मिक पहचान का उभार एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया के रूप में सामने आता है।

भारतीय समाज ऐतिहासिक रूप से बहु–धार्मिक, बहु–सांस्कृतिक और विविधताओं से भरा रहा है। परंतु नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान केवल आस्था या सांस्कृतिक परंपरा तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह सामाजिक और राजनीतिक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन गई। आर्थिक असमानता, बेरोजगारी और सामाजिक हाशियाकरण से जूझ रहे समुदायों के लिए धार्मिक पहचान एक ऐसा मंच प्रदान करती है, जिसके माध्यम से वे अपने अस्तित्व, सम्मान और सामूहिकता की भावना को पुनः स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

नवउदारवादी व्यवस्था में बाजार और मीडिया की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। मीडिया और सांस्कृतिक उद्योग धार्मिक प्रतीकों, आस्थाओं और पहचानों को बाजार के उत्पादों में परिवर्तित करने लगते हैं। इससे धार्मिक पहचान का बाजारीकरण होता है और वह सामाजिक चेतना को प्रभावित करने का एक प्रभावी साधन बन जाती है। इस प्रक्रिया में धार्मिक पहचान कई बार सामाजिक असमानता को चुनौती देने के बजाय उसे वैध ठहराने का माध्यम भी बन जाती है।

सामाजिक असमानता के संदर्भ में यह स्पष्ट होता है कि नवउदारवाद ने वर्गीय विभाजन को और अधिक तीव्र किया है। संसाधनों, अवसरों और शक्ति तक पहुँच सीमित वर्गों के हाथों में सिमटती जा रही है। ऐसे में धार्मिक पहचान अक्सर सामाजिक असंतोष को आर्थिक प्रश्नों से हटाकर सांस्कृतिक और धार्मिक प्रश्नों की ओर मोड़ देती है। परिणामस्वरूप असमानता के मूल आर्थिक कारणों पर व्यापक चर्चा के बजाय पहचान आधारित विभाजन को बढ़ावा मिलता है।

इस पृष्ठभूमि में यह शोध पत्र नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच मौजूद अंतर्संबंध का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार नवउदारवादी नीतियाँ सामाजिक संरचना को प्रभावित करती हैं और कैसे धार्मिक पहचान सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन में भूमिका निभाती है। यह शोध न केवल सामाजिक परिवर्तन की जटिल प्रक्रियाओं को समझने में सहायक है, बल्कि समकालीन भारतीय समाज की चुनौतियों पर भी महत्वपूर्ण दृष्टि प्रदान करता है।

2 साहित्य समीक्षा

नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता पर केंद्रित साहित्य मुख्यतः समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में विकसित हुआ है। इस साहित्य में नवउदारवाद को केवल आर्थिक नीतियों के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक–राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है, जिसने सामाजिक संबंधों, पहचान की संरचना और असमानता के स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। प्रस्तुत साहित्य समीक्षा में इन तीनों आयामों से संबंधित प्रमुख अध्ययनों का विश्लेषण किया गया है।

नवउदारवाद पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

नवउदारवाद पर हुए अध्ययनों में यह स्पष्ट किया गया है कि यह व्यवस्था राज्य की कल्याणकारी भूमिका को सीमित कर बाजार को सामाजिक जीवन का केंद्रीय नियामक बना देती है। अनेक विद्वानों ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि नवउदारवादी नीतियों के अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा जैसे क्षेत्रों का बाजारीकरण होता है, जिससे समाज में असमानता की खाई और अधिक गहरी होती जाती है। नवउदारवाद को प्रतिस्पर्धा, व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने वाली विचारधारा के रूप में देखा गया है, जो सामूहिक सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को कमजोर करती है।

भारतीय संदर्भ में किए गए अध्ययनों में यह दर्शाया गया है कि आर्थिक उदारीकरण के बाद ग्रामीण–शहरी विभाजन, संगठित–असंगठित क्षेत्र का अंतर तथा संपन्न और वंचित वर्गों के बीच की दूरी बढ़ी है। इन अध्ययनों का निष्कर्ष है कि नवउदारवाद सामाजिक संरचना को इस प्रकार पुनर्गठित करता है, जिससे संसाधनों तक पहुँच सीमित वर्गों तक सिमट जाती है और सामाजिक गतिशीलता बाधित होती है।

धार्मिक पहचान और पहचान की राजनीति

धार्मिक पहचान पर आधारित साहित्य में पहचान को एक स्थिर सांस्कृतिक तत्व के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक–राजनीतिक निर्माण के रूप में देखा गया है। विद्वानों का मत है कि पहचान की राजनीति तब उभरती है जब सामाजिक–आर्थिक असुरक्षा बढ़ती है और राज्य नागरिकों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रहता है। ऐसे में धर्म, जाति और संस्कृति जैसे तत्व सामूहिकता और सुरक्षा का विकल्प प्रदान करते हैं।

भारतीय समाज में धार्मिक पहचान ऐतिहासिक रूप से मौजूद रही है, किंतु समकालीन दौर में इसका स्वरूप अधिक राजनीतिक और संगठित हो गया है। अनेक अध्ययनों में यह तर्क दिया गया है कि धार्मिक पहचान का उपयोग सत्ता, संसाधनों और सामाजिक प्रभुत्व को स्थापित करने के लिए किया जाता है। धार्मिक प्रतीकों, अनुष्ठानों और आस्थाओं को सामाजिक लामबंदी के उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा है।

नवउदारवाद और धार्मिक पहचान का अंतर्संबंध

नवउदारवाद और धार्मिक पहचान के संबंध पर केंद्रित साहित्य यह दर्शाता है कि आर्थिक असमानता और सामाजिक असुरक्षा धार्मिक पहचान के उभार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। जब रोजगार के अवसर घटते हैं, सामाजिक सुरक्षा कमजोर होती है और भविष्य अनिश्चित दिखाई देता है, तब लोग आर्थिक प्रश्नों के स्थान पर सांस्कृतिक और धार्मिक प्रश्नों से जुड़ने लगते हैं। इस प्रक्रिया में धार्मिक पहचान सामाजिक असंतोष को व्यक्त करने का माध्यम बन जाती है।

कुछ विद्वानों ने यह भी तर्क दिया है कि नवउदारवादी व्यवस्था धार्मिक पहचान को सीधे चुनौती नहीं देती, बल्कि कई बार उसे अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन प्रदान करती है। बाजार और मीडिया के माध्यम से धार्मिक प्रतीकों का प्रचार–प्रसार होता है, जिससे धर्म एक उपभोग की वस्तु में परिवर्तित हो जाता है। इस बाजारीकरण के कारण धार्मिक पहचान का सामाजिक प्रभाव और अधिक व्यापक हो जाता है।

सामाजिक असमानता और धार्मिक पहचान

सामाजिक असमानता पर आधारित अध्ययनों में यह स्पष्ट किया गया है कि नवउदारवाद के दौर में वर्गीय असमानता के साथ–साथ धार्मिक असमानता भी बढ़ी है। संसाधनों, शिक्षा और रोजगार तक असमान पहुँच ने समाज में हाशियाकरण की प्रक्रिया को तेज किया है। धार्मिक पहचान कई बार इस हाशियाकरण को चुनौती देने के बजाय उसे वैध ठहराने का माध्यम बन जाती है।

कुछ अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि धार्मिक पहचान सामाजिक असमानता को प्राकृतिक या सांस्कृतिक रूप देकर आर्थिक असमानताओं से ध्यान हटाने का कार्य करती है। इस प्रकार असमानता के मूल संरचनात्मक कारणों पर व्यापक सामाजिक विमर्श कमजोर पड़ जाता है।

मीडिया, संस्कृति और पहचान

समकालीन साहित्य में मीडिया की भूमिका को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। मीडिया धार्मिक पहचान को सुदृढ़ करने, उसका प्रसार करने और उसे सामान्य सामाजिक चेतना का हिस्सा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धार्मिक प्रतीकों का निरंतर दृश्य–श्रव्य प्रस्तुतीकरण समाज में पहचान आधारित ध्रुवीकरण को बढ़ावा देता है। यह प्रक्रिया नवउदारवादी बाजार व्यवस्था के अनुरूप कार्य करती है, जहाँ सांस्कृतिक तत्व भी उपभोग की वस्तु बन जाते हैं।

शोध अंतराल

उपरोक्त साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता पर अलग–अलग रूप में पर्याप्त अध्ययन उपलब्ध हैं। परंतु इन तीनों को एक साथ जोड़कर, भारतीय समाज के संदर्भ में समग्र समाजशास्त्रीय विश्लेषण अपेक्षाकृत सीमित है। विशेष रूप से यह समझने की आवश्यकता है कि किस प्रकार नवउदारवादी नीतियाँ धार्मिक पहचान को प्रभावित करती हैं और कैसे यह पहचान सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन में भूमिका निभाती है। प्रस्तुत शोध इसी शोध अंतराल को भरने का प्रयास करता है।

3 अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच विकसित हो रहे जटिल अंतर्संबंधों का गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। इस अध्ययन के अंतर्गत निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित किया गया है:

नवउदारवादी नीतियों के सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करना

इस उद्देश्य के अंतर्गत यह समझने का प्रयास किया गया है कि आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और बाजारोन्मुख नीतियों ने भारतीय समाज की सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया है। विशेष

रूप से यह अध्ययन किया गया है कि नवउदारवाद ने राज्य की कल्याणकारी भूमिका को सीमित कर सामाजिक सुरक्षा, रोजगार और समान अवसरों की अवधारणा को किस प्रकार कमजोर किया है।

धार्मिक पहचान के उभार के सामाजिक और आर्थिक कारणों की पहचान करना
इस उद्देश्य का लक्ष्य यह स्पष्ट करना है कि नवउदारवादी दौर में बढ़ती आर्थिक असुरक्षा, बेरोजगारी, सामाजिक हाशियाकरण और वर्गीय विभाजन ने धार्मिक पहचान को किस प्रकार सामाजिक चेतना के केंद्र में ला दिया है। इसमें यह भी विश्लेषित किया गया है कि धार्मिक पहचान केवल आस्था का विषय न रहकर सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक अभिव्यक्ति का माध्यम कैसे बनी।

नवउदारवाद और सामाजिक असमानता के अंतर्संबंध का अध्ययन करना
इस उद्देश्य के माध्यम से यह जांचने का प्रयास किया गया है कि नवउदारवादी नीतियों के कारण संसाधनों, अवसरों और शक्ति के असमान वितरण ने सामाजिक असमानता को किस प्रकार गहराया है। अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि यह असमानता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी कैसे परिलक्षित होती है।

धार्मिक पहचान की भूमिका का विश्लेषण करना, जो सामाजिक असमानता को पुनरुत्पादित करती है
इस उद्देश्य के अंतर्गत यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार धार्मिक पहचान सामाजिक असमानता को चुनौती देने के बजाय कई बार उसे वैध ठहराने का कार्य करती है। धार्मिक पहचान के माध्यम से सामाजिक विभाजन, बहिष्करण और वर्चस्व की प्रक्रियाओं को किस प्रकार सामान्यीकृत किया जाता है, इसका विश्लेषण इस उद्देश्य के अंतर्गत किया गया है।

बाजार और मीडिया की भूमिका को समझना, जो धार्मिक पहचान को आकार देती है
इस उद्देश्य का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि नवउदारवादी व्यवस्था में बाजार और मीडिया धार्मिक प्रतीकों, आस्थाओं और पहचानों को किस प्रकार प्रस्तुत और प्रसारित करते हैं। यह अध्ययन करता है कि मीडिया द्वारा धार्मिक पहचान के निरंतर प्रस्तुतीकरण से सामाजिक चेतना और असमानता की संरचना पर क्या प्रभाव पड़ता है।

भारतीय समाज में हो रहे समकालीन सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करना
अंतिम उद्देश्य के रूप में यह अध्ययन भारतीय समाज में नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के संयुक्त प्रभाव से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तन की समग्र व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह उद्देश्य समाज में बढ़ते ध्रुवीकरण , सामाजिक विभाजन और पहचान आधारित राजनीति को व्यापक सामाजिक संदर्भ में समझने का प्रयास करता है।

4 शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र में नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के अंतर्संबंध का अध्ययन करने के लिए वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति को अपनाया गया है। यह अध्ययन किसी एक क्षेत्र या समुदाय तक सीमित न होकर भारतीय समाज की व्यापक सामाजिक संरचना को ध्यान में रखकर किया गया है। चूँकि यह विषय सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आयामों से जुड़ा हुआ है, इसलिए बहुआयामी दृष्टिकोण को शोध पद्धति का आधार बनाया गया है।

शोध का स्वरूप
यह शोध गुणात्मक स्वरूप का है, जिसमें सामाजिक यथार्थ की व्याख्या तथ्यों के मात्र संकलन के बजाय उनके गहन विश्लेषण के माध्यम से की गई है। शोध का उद्देश्य किसी परिकल्पना की संख्यात्मक जाँच करना नहीं, बल्कि नवउदारवादी नीतियों के सामाजिक प्रभावों को समझना तथा धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच विकसित हो रहे संबंधों की व्याख्या करना है। इस कारण से शोध में समाजशास्त्रीय और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रमुखता दी गई है।

स्रोतों का चयन
प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इनमें पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, सामाजिक एवं आर्थिक विषयों पर आधारित अध्ययनों, सरकारी एवं गैर–सरकारी रिपोर्टों, तथा विश्वसनीय

समाचार स्रोतों का उपयोग किया गया है। इन स्रोतों के माध्यम से नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता से संबंधित विभिन्न दृष्टिकोणों को संकलित किया गया है।
पुस्तकों के माध्यम से नवउदारवादी विचारधारा और उसके सामाजिक प्रभावों की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को समझा गया है। शोध पत्रों के माध्यम से समकालीन समाजशास्त्रीय विमर्श, पहचान की राजनीति और असमानता से जुड़े अनुभवजन्य विश्लेषणों को शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक परिवर्तन से संबंधित रिपोर्टों का उपयोग करके भारतीय समाज में हुए संरचनात्मक परिवर्तनों को स्पष्ट किया गया है।

विश्लेषण की पद्धति

शोध में संकलित सामग्री का विश्लेषण विषयवस्तु आधारित विश्लेषण की पद्धति से किया गया है। इसके अंतर्गत नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता से संबंधित प्रमुख अवधारणाओं को अलग–अलग तथा परस्पर संबंध में रखकर समझने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक अवधारणा का विश्लेषण उसके ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में किया गया है।
नवउदारवाद के विश्लेषण में यह देखा गया है कि किस प्रकार आर्थिक नीतियों में हुए परिवर्तनों ने सामाजिक संबंधों को प्रभावित किया है। धार्मिक पहचान के संदर्भ में यह समझने का प्रयास किया गया है कि पहचान किस प्रकार सामाजिक सुरक्षा, सामूहिकता और सत्ता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। सामाजिक असमानता के विश्लेषण में वर्ग, संसाधनों की उपलब्धता और सामाजिक अवसरों के वितरण पर विशेष ध्यान दिया गया है।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण

इस शोध में केवल वर्णनात्मक विवरण तक सीमित न रहते हुए आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। इसके अंतर्गत यह प्रश्न उठाया गया है कि नवउदारवादी व्यवस्था किस प्रकार सामाजिक असमानता को बनाए रखने या बढ़ाने में भूमिका निभाती है। साथ ही यह भी विश्लेषित किया गया है कि धार्मिक पहचान किस हद तक सामाजिक असमानता को चुनौती देती है और किस हद तक उसे वैध ठहराने का कार्य करती है।
आलोचनात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि धार्मिक पहचान का उभार स्वतःस्फूर्त सामाजिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक हाशियाकरण और राजनीतिक रणनीतियों से गहराई से जुड़ा हुआ है।

मीडिया और सांस्कृतिक स्रोतों का उपयोग

शोध पद्धति के अंतर्गत मीडिया और सांस्कृतिक स्रोतों का भी विश्लेषण किया गया है। समाचार पत्रों, दृश्य माध्यमों और सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि धार्मिक पहचान को किस प्रकार सामाजिक चेतना में स्थापित किया जाता है। यह विश्लेषण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि नवउदारवादी व्यवस्था में मीडिया एक प्रभावशाली सामाजिक संस्था के रूप में उभरती है।

अध्ययन की सीमाएँ

प्रस्तुत शोध की कुछ सीमाएँ भी हैं। यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, इसलिए इसमें प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन या सर्वेक्षण शामिल नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, भारतीय समाज की व्यापक विविधता को देखते हुए सभी क्षेत्रीय और स्थानीय अनुभवों को समान रूप से शामिल करना संभव नहीं हो सका है। फिर भी, उपलब्ध साहित्य और विश्लेषण के आधार पर सामाजिक प्रवृत्तियों की समग्र व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

शोध की प्रासंगिकता

इस शोध पद्धति के माध्यम से नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच संबंधों को समझने का एक सुसंगत ढाँचा तैयार किया गया है। यह पद्धति न केवल समकालीन भारतीय समाज की जटिलताओं को समझने में सहायक है, बल्कि भविष्य के समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लिए भी एक आधार प्रदान करती है।

5 विश्लेषण एवं विवेचना

नवउदारवाद के दौर में भारतीय समाज में जो परिवर्तन घटित हुए हैं, वे केवल आर्थिक संरचना तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उन्होंने सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों और पहचान की राजनीति को भी गहराई से प्रभावित किया है। नवउदारवाद ने राज्य, समाज और बाजार के पारंपरिक संबंधों को पुनर्परिभाषित किया है। इस पुनर्परिभाषा की प्रक्रिया में धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच एक जटिल और बहुस्तरीय अंतर्संबंध विकसित हुआ है, जिसे समझना समकालीन भारतीय समाज के विश्लेषण के लिए अत्यंत आवश्यक है।

नवउदारवाद और राज्य की बदलती भूमिका

नवउदारवादी नीतियों के लागू होने के बाद राज्य की भूमिका में मूलभूत परिवर्तन देखने को मिलता है। राज्य, जो पहले सामाजिक कल्याण, सुरक्षा और समान अवसरों का प्रमुख उत्तरदायी माना जाता था, धीरे–धीरे अपनी जिम्मेदारियों से पीछे हटने लगता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में राज्य का हस्तक्षेप सीमित होता गया और इन क्षेत्रों में बाजार की भूमिका बढ़ती चली गई। इस प्रक्रिया का प्रत्यक्ष प्रभाव समाज के कमजोर और वंचित वर्गों पर पड़ा, जिनके लिए राज्य की सहायता जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने का एकमात्र साधन थी।

राज्य की इस पीछे हटती भूमिका ने समाज में असुरक्षा और अनिश्चितता की भावना को जन्म दिया। जब सामाजिक सुरक्षा कमजोर होती है, तब लोग वैकल्पिक सहारों की तलाश करते हैं। इसी संदर्भ में धार्मिक पहचान एक ऐसे सामाजिक आधार के रूप में उभरती है, जो व्यक्ति को सामूहिकता, सुरक्षा और नैतिक समर्थन का अनुभव कराती है। इस प्रकार नवउदारवाद और धार्मिक पहचान के बीच एक अप्रत्यक्ष किंतु प्रभावशाली संबंध स्थापित होता है।

बाजार, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक संबंधों का परिवर्तन

नवउदारवादी व्यवस्था में बाजार केवल आर्थिक लेन–देन का माध्यम नहीं रहता, बल्कि वह सामाजिक जीवन का प्रमुख नियामक बन जाता है। प्रतिस्पर्धा, लाभ और उपभोक्तावाद को सामाजिक मूल्यों के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगता है। इस प्रक्रिया में सहयोग, सामूहिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्य धीरे–धीरे कमजोर पड़ जाते हैं।

इस परिवर्तन का सामाजिक प्रभाव यह होता है कि समाज में वर्गीय विभाजन और अधिक स्पष्ट हो जाता है। जिनके पास पूँजी, शिक्षा और संसाधन हैं, वे नवउदारवादी व्यवस्था से लाभान्वित होते हैं, जबकि कमजोर वर्ग और अधिक हाशिए पर चले जाते हैं। यह आर्थिक असमानता केवल आय तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक सम्मान, पहचान और अवसरों तक भी फैल जाती है।

इसी असमानता की पृष्ठभूमि में धार्मिक पहचान एक सामाजिक प्रतिक्रिया के रूप में उभरती है। आर्थिक असमानता से उत्पन्न असंतोष को कई बार धार्मिक और सांस्कृतिक अस्मिता के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। इस प्रक्रिया में आर्थिक प्रश्नों का स्थान पहचान आधारित प्रश्न ले लेते हैं।

धार्मिक पहचान का सामाजिक निर्माण

धार्मिक पहचान को केवल आस्था या परंपरा के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। समकालीन समाज में धार्मिक पहचान एक सामाजिक और राजनीतिक निर्माण है, जो विशेष ऐतिहासिक और आर्थिक परिस्थितियों में आकार लेती है। नवउदारवाद के दौर में जब आर्थिक सुरक्षा कमजोर होती है और सामाजिक असमानता बढ़ती है, तब धार्मिक पहचान व्यक्ति और समूह को एक स्थिर पहचान प्रदान करती है।

धार्मिक पहचान के माध्यम से व्यक्ति स्वयं को किसी बड़े समुदाय का हिस्सा महसूस करता है। यह भावना विशेष रूप से उन वर्गों के लिए महत्वपूर्ण हो जाती है, जो आर्थिक और सामाजिक रूप से असुरक्षित हैं। इस प्रकार धार्मिक पहचान सामाजिक असमानता के प्रभावों को अस्थायी रूप से कम करने का एक मानसिक और सांस्कृतिक साधन बन जाती है।

धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता का पुनरुत्पादन

यद्यपि धार्मिक पहचान असुरक्षा की भावना को कम करने में सहायक प्रतीत होती है, परंतु यह सामाजिक असमानता को समाप्त करने के बजाय कई बार उसे और मजबूत कर देती है। धार्मिक पहचान के आधार

पर समाज का विभाजन होता है, जिससे संसाधनों, अवसरों और शक्ति तक पहुँच और अधिक असमान हो जाती है।

धार्मिक पहचान के माध्यम से सामाजिक असमानता को प्राकृतिक या सांस्कृतिक रूप देकर प्रस्तुत किया जाता है। इससे असमानता के आर्थिक और संरचनात्मक कारणों पर चर्चा कमजोर पड़ जाती है। परिणामस्वरूप सामाजिक असमानता को चुनौती देने के बजाय उसे स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ती है।

मीडिया और धार्मिक पहचान

नवउदारवादी दौर में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। मीडिया न केवल सूचना का माध्यम रहता है, बल्कि वह सामाजिक चेतना के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाता है। धार्मिक प्रतीकों, आस्थाओं और आयोजनों का निरंतर प्रचार–प्रसार धार्मिक पहचान को सामाजिक जीवन के केंद्र में स्थापित करता है।

मीडिया के माध्यम से धार्मिक पहचान का ऐसा रूप प्रस्तुत किया जाता है, जो भावनात्मक, सरल और व्यापक प्रभाव डालने वाला होता है। यह प्रक्रिया सामाजिक असमानता के जटिल प्रश्नों से ध्यान हटाकर भावनात्मक मुद्दों पर केंद्रित कर देती है। इस प्रकार मीडिया धार्मिक पहचान को नवउदारवादी व्यवस्था के अनुरूप ढालने का कार्य करता है।

संस्कृति, बाजारीकरण और पहचान

नवउदारवादी व्यवस्था में संस्कृति भी बाजार के अधीन हो जाती है। धार्मिक उत्सव, परंपराएँ और प्रतीक उपभोग की वस्तुओं में परिवर्तित हो जाते हैं। इस बाजारीकरण के माध्यम से धार्मिक पहचान का सामाजिक प्रभाव और अधिक व्यापक हो जाता है।

संस्कृति का यह बाजारीकरण सामाजिक असमानता को छिपाने का कार्य करता है। जब धार्मिक पहचान को उत्सव और उपभोग के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तब असमानता के प्रश्न हाशिए पर चले जाते हैं। इस प्रकार संस्कृति नवउदारवादी व्यवस्था के समर्थन में कार्य करने लगती है।

नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक ध्रुवीकरण

नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान का उभार समाज में ध्रुवीकरण को बढ़ावा देता है। सामाजिक असमानता से उत्पन्न असंतोष को धार्मिक आधार पर विभाजित कर दिया जाता है। इससे समाज में संवाद और सहमति के स्थान पर टकराव और विभाजन की स्थिति उत्पन्न होती है।

यह ध्रुवीकरण सामाजिक असमानता को कम करने के बजाय उसे और अधिक जटिल बना देता है। विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा और अविश्वास की भावना बढ़ती है, जिससे सामाजिक एकता कमजोर होती है।

समकालीन भारतीय समाज में अंतर्संबंधों की जटिलता

समकालीन भारतीय समाज में नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच संबंध अत्यंत जटिल हैं। नवउदारवाद आर्थिक असमानता को बढ़ाता है, धार्मिक पहचान उस असमानता की सामाजिक अभिव्यक्ति बनती है, और यह पहचान पुनः असमानता को वैध ठहराने का माध्यम बन जाती है। इस चक्र को तोड़े बिना सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना संभव नहीं है।

समग्र विवेचना

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच एक गहन और बहुस्तरीय अंतर्संबंध मौजूद है। धार्मिक पहचान न तो पूरी तरह सामाजिक असमानता के विरुद्ध संघर्ष का माध्यम है और न ही केवल आस्था का प्रश्न। वह एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है, जो नवउदारवादी व्यवस्था के भीतर विकसित होकर सामाजिक संरचना को प्रभावित करती है।

6 निष्कर्ष एवं निहितार्थ

प्रस्तुत शोध पत्र में नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच विकसित हो रहे जटिल अंतर्संबंधों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। अध्ययन के दौरान यह स्पष्ट रूप से सामने आया है कि नवउदारवाद केवल आर्थिक नीतियों का समूह नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी व्यापक सामाजिक प्रक्रिया है जिसने भारतीय समाज की संरचना, मूल्यों और संबंधों को गहराई से प्रभावित किया है। इसके प्रभाव सामाजिक जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में परिलक्षित होते हैं, जिनमें धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि नवउदारवादी नीतियों के कारण राज्य की कल्याणकारी भूमिका में आई कमी ने समाज में असुरक्षा और अनिश्चितता की भावना को बढ़ाया है। जब शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा जैसे मूलभूत क्षेत्रों में राज्य का हस्तक्षेप कमजोर होता है, तब समाज के बड़े हिस्से को अपने अस्तित्व और भविष्य को लेकर गंभीर चिंताओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में धार्मिक पहचान एक वैकल्पिक सामाजिक आधार के रूप में उभरती है, जो व्यक्ति और समूह को सामूहिकता, सुरक्षा और मानसिक स्थिरता का अनुभव कराती है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि धार्मिक पहचान का उभार स्वतःस्फूर्त या केवल सांस्कृतिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से गहराई से जुड़ा हुआ है। नवउदारवादी व्यवस्था के अंतर्गत बढ़ती आर्थिक असमानता, वर्गीय विभाजन और सामाजिक हाशियाकरण ने पहचान आधारित राजनीति को नई ऊर्जा प्रदान की है। धार्मिक पहचान उन वर्गों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है, जो आर्थिक और सामाजिक रूप से स्वयं को असुरक्षित अनुभव करते हैं। इस प्रकार धार्मिक पहचान सामाजिक असमानता की परिस्थितियों में एक प्रतिक्रिया के रूप में उभरती है।

हालाँकि, शोध के निष्कर्ष यह भी दर्शाते हैं कि धार्मिक पहचान सामाजिक असमानता को समाप्त करने के बजाय कई बार उसे और अधिक जटिल तथा मजबूत बना देती है। धार्मिक पहचान के माध्यम से समाज का विभाजन होता है, जिससे संसाधनों, अवसरों और शक्ति तक पहुँच और अधिक असमान हो जाती है। इस प्रक्रिया में असमानता के मूल आर्थिक और संरचनात्मक कारणों पर व्यापक सामाजिक विमर्श कमजोर पड़ जाता है। धार्मिक पहचान सामाजिक असमानता को चुनौती देने के स्थान पर कई बार उसे सांस्कृतिक या नैतिक रूप देकर वैध ठहराने का कार्य करती है।

मीडिया और बाजार की भूमिका इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण पाई गई है। नवउदारवादी व्यवस्था में मीडिया केवल सूचना का माध्यम नहीं रहता, बल्कि वह सामाजिक चेतना के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाता है। धार्मिक प्रतीकों, आस्थाओं और आयोजनों का निरंतर और भावनात्मक प्रस्तुतीकरण धार्मिक पहचान को सामाजिक जीवन के केंद्र में स्थापित करता है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक असमानता जैसे जटिल प्रश्न हाशिए पर चले जाते हैं और सार्वजनिक विमर्श भावनात्मक तथा पहचान आधारित मुद्दों तक सीमित हो जाता है।

संस्कृति के बाजारीकरण ने भी धार्मिक पहचान को नई दिशा दी है। धार्मिक उत्सव, परंपराएँ और प्रतीक उपभोग की वस्तुओं में परिवर्तित हो गए हैं। यह प्रक्रिया नवउदारवादी व्यवस्था के अनुरूप कार्य करती है, जहाँ सांस्कृतिक तत्व भी बाजार के नियमों के अधीन हो जाते हैं। संस्कृति का यह बाजारीकरण सामाजिक असमानता को छिपाने और सामान्यीकृत करने में सहायक सिद्ध होता है।

प्रस्तुत अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच एक चक्रीय संबंध विकसित हो गया है। नवउदारवाद आर्थिक असमानता को बढ़ाता है, यह असमानता धार्मिक पहचान के उभार को प्रोत्साहित करती है, और धार्मिक पहचान पुनः सामाजिक असमानता को वैध ठहराने का माध्यम बन जाती है। इस चक्र को तोड़े बिना सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना संभव नहीं है।

निहितार्थ

इस शोध के निष्कर्षों के कई महत्वपूर्ण सामाजिक और शैक्षणिक निहितार्थ हैं। सबसे पहले, यह अध्ययन नीति–निर्माताओं के लिए एक महत्वपूर्ण संकेत प्रस्तुत करता है कि केवल आर्थिक विकास पर केंद्रित नीतियाँ सामाजिक समरसता और समानता सुनिश्चित नहीं कर सकतीं। यदि सामाजिक सुरक्षा, समान अवसर और न्याय को नीति–निर्माण का केंद्रीय तत्व नहीं बनाया गया, तो पहचान आधारित विभाजन और असमानता और अधिक गहराती जाएगी।

दूसरे, यह अध्ययन समाजशास्त्रीय विमर्श के लिए यह स्पष्ट करता है कि धार्मिक पहचान को केवल सांस्कृतिक या धार्मिक परिघटना के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसे सामाजिक और आर्थिक संदर्भ में समझना आवश्यक है। धार्मिक पहचान के उभार के पीछे मौजूद संरचनात्मक कारणों की पहचान किए बिना सामाजिक असमानता को कम करने के प्रयास अधूरे रहेंगे।

तीसरे, मीडिया और सांस्कृतिक संस्थाओं के लिए यह अध्ययन आत्ममंथन का अवसर प्रदान करता है। मीडिया की भूमिका केवल सूचना प्रसारित करने तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक चेतना के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि मीडिया धार्मिक पहचान को एकांगी और भावनात्मक रूप में प्रस्तुत करता है, तो सामाजिक असमानता और विभाजन को बढ़ावा मिल सकता है।

चौथे, यह शोध भविष्य के अकादमिक अध्ययनों के लिए एक आधार प्रदान करता है। नवउदारवाद, धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के अंतर्संबंध पर क्षेत्रीय, तुलनात्मक और अनुभवजन्य अध्ययन किए जा सकते हैं, जो इस विषय को और अधिक गहराई से समझने में सहायक होंगे।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि नवउदारवाद के दौर में धार्मिक पहचान और सामाजिक असमानता के बीच का संबंध भारतीय समाज की सबसे जटिल और चुनौतीपूर्ण वास्तविकताओं में से एक है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक न्याय, समानता और समरसता की स्थापना के लिए आर्थिक नीतियों के साथ–साथ सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं पर भी समान रूप से ध्यान देना आवश्यक है। जब तक नवउदारवादी व्यवस्था के भीतर उत्पन्न असमानताओं को संबोधित नहीं किया जाएगा, तब तक धार्मिक पहचान के माध्यम से उत्पन्न सामाजिक विभाजन को कम करना संभव नहीं होगा।

7 संदर्भ सूची

हार्वे, डेविड (2007). नवउदारवाद का संक्षिप्त इतिहास. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन।

ब्राउन, वेंडी (2015). नवउदारवाद और लोकतंत्र का क्षरण. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन।

जाफ्रेलो, क्रिस्टोफ (2019). भारत में पहचान की राजनीति. नई दिल्ली: पेंगुइन प्रकाशन।

चटर्जी, पार्थ (2011). राज्य और नागरिक समाज. नई दिल्ली: स्थायी प्रकाशन।

देसाई, आर. एम. (2014). भारत में आर्थिक उदारीकरण और सामाजिक असमानता. भारतीय समाजशास्त्र, 48(2), 215–232।

कुमार, दीपक (2016). नवउदारवाद और भारतीय लोकतंत्र. समाज विज्ञान विमर्श, 12(1), 45–62।

सिंह, योगेंद्र (2010). आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।

मंडल, अरुण (2018). धार्मिक पहचान और सामाजिक विभाजन. समकालीन समाज अध्ययन, 9(2), 101–118।

सेन, अमर्त्य (2009). न्याय का विचार. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन।

दास, वीणा (2013). संस्कृति, सत्ता और समाज. सामाजिक चिंतन, 7(1), 1–19।

मिश्रा, राजनी (2017). नवउदारवादी भारत में मीडिया और पहचान. जनसंचार अध्ययन, 14(3), 78–95।

पटेल, सुहास (2015). वर्ग, जाति और धार्मिक पहचान. भारतीय सामाजिक अनुसंधान, 22(2), 56–74।

यादव, संजय (2020). सामाजिक असमानता और पहचान की राजनीति. समाज और राजनीति, 18(1), 33–50।

सरकार, सुमित (2008). आधुनिक भारत का इतिहास और सामाजिक चेतना. नई दिल्ली: मैकमिलन।

घोष, जयति (2021). नवउदारवाद और असमान विकास. आर्थिक एवं सामाजिक समीक्षा, 16(2), 89–107।

बैनर्जी, अभिजीत (2019). आर्थिक असमानता और सामाजिक परिणाम. भारतीय आर्थिक विमर्श, 11(1), 12–28।

चौधरी, सीमा (2022). धार्मिक पहचान और समकालीन भारत. समाजशास्त्रीय अध्ययन, 19(1), 64–81।

त्रिपाठी, रवींद्र (2018). नवउदारवाद के सांस्कृतिक प्रभाव. संस्कृति और समाज, 6(2), 91–110।